REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 15 | ISSUE - 7 | APRIL - 2026

दलित साहित्य में सामाजिक क्रूरता के प्रति विरोधी स्वर का अध्ययन

रामानुज पटेल
शोधार्थी हिन्दी
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. निर्मला साहू
सहायक प्राध्यापक हिन्दी
श्री दयाराम शिक्षा महाविद्यालय सेमरिया, जिला रीवा (म.प्र.)

सारांश –

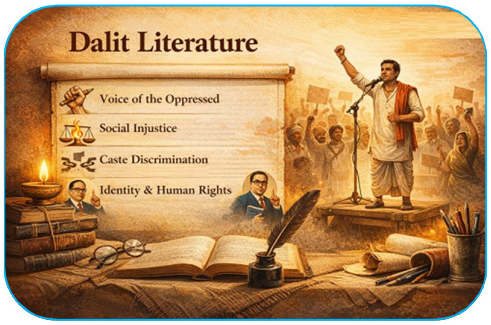

भारतीय सामाजिक संरचना का इतिहास अनेक प्रकार की विषमताओं, असमानताओं एवं क्रूरताओं से भरा हुआ रहा है, जिसमें जाति, वर्ग, लिंग एवं आर्थिक विभाजन ने समाज के एक बड़े हिस्से को लंबे समय तक शोषण और उपेक्षा की स्थिति में बनाए रखा। इसी संदर्भ में "सामाजिक क्रूरता" वह अवधारणा है, जो उन अमानवीय व्यवहारों, भेदभावपूर्ण प्रथाओं एवं संस्थागत अन्यायों को इंगित करती है, जिनके माध्यम से समाज के कमजोर एवं हाशिए पर स्थित वर्गों का दमन किया गया है। इसके विरुद्ध उभरने वाला "विरोधी स्वर" एक ऐसी चेतना है, जो इन क्रूरताओं को अस्वीकार करते हुए समानता, न्याय एवं मानवीय गरिमा की स्थापना की मांग करता है।

मुख्य शब्द – भारतीय, सामाजिक संरचना, विषमता, असमानता एवं सामाजिक क्रूरता।

प्रस्तावना –

हिन्दी साहित्य, विशेषकर दलित साहित्य एवं समकालीन संवेदनशील रचनाधर्मिता में सामाजिक क्रूरता के प्रति यह विरोधी स्वर अत्यंत प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त हुआ है। यह स्वर केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि एक सुसंगठित वैचारिक प्रतिरोध है, जो समाज की स्थापित सत्ता संरचनाओं पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। इस साहित्यिक अभिव्यक्ति में उन अनुभवों को प्रमुखता दी गई है, जिनमें व्यक्ति या समुदाय ने जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता, शोषण, अपमान एवं बहिष्कार जैसी क्रूरताओं को प्रत्यक्ष रूप से झेला है।

सामाजिक क्रूरता के प्रति यह विरोधी स्वर मूलतः अनुभवजन्य यथार्थ पर आधारित है। यह उन आवाजों की अभिव्यक्ति है, जिन्हें लंबे समय तक मुख्यधारा के साहित्य एवं समाज में या तो अनसुना किया गया या उपेक्षित रखा गया। दलित एवं वंचित वर्गों के लेखन में यह स्वर विशेष रूप से तीव्रता के साथ उभरता है, जहाँ जीवन के कटु अनुभवों को साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रतिरोध का रूप प्रदान किया गया है।

इस विरोधी स्वर की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसकी प्रतिरोधात्मक चेतना है। यह चेतना केवल अन्याय को उजागर नहीं करती, बल्कि उसके विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा भी प्रदान करती है। इसमें सामाजिक व्यवस्था के उन आधारभूत ढाँचों की आलोचना की जाती है, जो असमानता और भेदभाव को बनाए रखते हैं। यह स्वर यह प्रश्न उठाता है कि क्या कोई समाज वास्तव में तब तक न्यायपूर्ण हो सकता है जब तक उसके भीतर मानव–मानव के बीच ऊँच–नीच का भेद विद्यमान रहे। भाषिक दृष्टि से भी यह विरोधी स्वर अत्यंत प्रभावशाली

एवं तीक्ष्ण है। इसमें सीधी, सरल और यथार्थपरक भाषा का प्रयोग किया जाता है, जो सामाजिक क्रूरता की वास्तविकता को बिना किसी आवरण के प्रस्तुत करती है। इस भाषा में आक्रोश, पीड़ा और प्रतिरोध का समन्वय दिखाई देता है, जो पाठक को केवल संवेदित ही नहीं करता, बल्कि चिंतन के लिए भी बाध्य करता है।

सामाजिक क्रूरता के प्रति यह विरोधी स्वर केवल साहित्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यापक सामाजिक आंदोलन का हिस्सा भी है। यह स्वर समाज में व्याप्त अमानवीयता के विरुद्ध जागरूकता उत्पन्न करता है और समानता आधारित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की दिशा में प्रेरित करता है। यह स्वर इस बात का संकेत है कि कोई भी समाज तब तक वास्तविक प्रगति नहीं कर सकता, जब तक वह अपने भीतर विद्यमान अन्याय और क्रूरता को समाप्त न कर दे।

सामाजिक क्रूरता के प्रति विरोधी स्वर एक ऐसी चेतना है, जो शोषण, भेदभाव एवं अमानवीय व्यवहारों के विरुद्ध साहित्यिक एवं सामाजिक प्रतिरोध के रूप में विकसित हुई है। यह स्वर मानव गरिमा, समानता एवं न्याय की स्थापना का सशक्त माध्यम है और आधुनिक हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा एवं दृष्टि प्रदान करता है।

हिन्दी की दलित कविता मूलतः प्रतिरोध, आक्रोश और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष की कविता है। यह उन ऐतिहासिक अनुभवों की अभिव्यक्ति है, जिनमें दलित समुदाय को सदियों तक सामाजिक बहिष्कार, अपमान और शोषण का सामना करना पड़ा। दलित कविता में वर्णित पीड़ा केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक है, जो उस सामाजिक संरचना की देन है, जिसने दलितों को हाशिये पर धकेलकर उनके अस्तित्व को ही संकटग्रस्त बना दिया। इस संदर्भ में दलित कवि अपने काव्य के माध्यम से उस रूढ़ सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देते हैं, जो मनुष्य को जन्म के आधार पर उच्च और निम्न में विभाजित करती रही है।

दलित कविता का यह विरोधी स्वर केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं है, बल्कि एक सजग और वैचारिक हस्तक्षेप है। इसमें समानता, समरसता और सामाजिक न्याय की आकांक्षा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। दलितों के शोषण के प्रमुख कारणों–गरीबी और अशिक्षा को रेखांकित करते हुए यह कविता सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित करती है। इस प्रकार दलित कविता केवल यथार्थ का चित्रण नहीं करती, बल्कि उसे बदलने की प्रेरणा भी देती है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में दलित कविता की प्रासंगिकता को रेखांकित करते हुए जयप्रकाश कर्दम का मत उल्लेखनीय है कि दलित चेतना समकालीन हिन्दी कविता का एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है। यह कविता न केवल हिन्दी काव्य को एक नया रूप प्रदान करती है, बल्कि उसे नये मुहावरे, नयी संवेदना और जीवन्तता से भी समृद्ध करती है। दलित कविता ने पारंपरिक काव्य–संरचनाओं को तोड़ते हुए अनुभव की प्रामाणिकता को प्राथमिकता दी है, जिससे हिन्दी कविता का स्वर अधिक व्यापक और यथार्थपरक बना है।[1]

दलित कविता का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वह करुणा, दया और सहानुभूति की सीमाओं को पार कर प्रतिरोध और आत्मसम्मान की भाषा में परिवर्तित होती है। यह कविता सामंतवादी व्यवस्था और शोषण के विरुद्ध सीधी चुनौती प्रस्तुत करती है। दलित कवि अब केवल पीड़ा का वर्णन नहीं करते, बल्कि सत्ता–संरचनाओं से आँख मिलाकर संवाद करते हैं और उन्हें कठघरे में खड़ा करते हैं। इस प्रक्रिया में वे उस ऐतिहासिक विरासत की भी समीक्षा करते हैं, जिसने असमानता और भेदभाव को वैधता प्रदान की।

समकालीन दलित कविता ने रूढ़िवादी आस्थाओं और परंपराओं का भी तीखा प्रतिरोध किया है। ईश्वरवाद, ब्राह्मणवाद और जातिगत वर्चस्व के विरुद्ध यह कविता एक वैचारिक संघर्ष प्रस्तुत करती है। साथ ही, यह दलित अस्मिता, प्रतिष्ठा और अधिकारों की स्थापना के लिए नये सामाजिक मूल्यों का निर्माण करती है। इस प्रकार दलित कविता केवल विरोध का माध्यम नहीं, बल्कि एक नये समाज के निर्माण की दिशा में सक्रिय हस्तक्षेप भी है।

विश्लेषण –

आधुनिक दलित कविता का संगठित रूप डॉ. भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक आंदोलन के साथ उभरता है, जिसने दलित समाज को आत्मसम्मान, शिक्षा और अधिकारों के प्रति जागरूक किया। महाराष्ट्र से प्रारंभ हुई यह चेतना धीरे–धीरे हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाओं में भी विस्तृत हुई। दलित साहित्यकारों ने अम्बेडकर के विचारों और आंदोलनों–महाड़ सत्याग्रह, कालाराम मंदिर प्रवेश आंदोलन, दीक्षाभूमि आदि को अपनी रचनाओं का विषय बनाकर उन्हें जन–जन तक पहुँचाया। इस प्रक्रिया में दलित कविता एक व्यापक सामाजिक

आंदोलन का साहित्यिक रूप बनकर उभरी। उदाहरणस्वरूप निम्न पंक्तियाँ दलित कविता के आशावादी और परिवर्तनकारी स्वर को व्यक्त करती हैं –

"कुछ और देर में बदलाव नजर आयेगा,
नई सुबह का इंतजार कर रहा हूँ मैं।
जो गिर पड़े हैं उन्हें शब्द सहारा देंगे,
गजल सोच का विस्तार कर रहा हूँ मैं।"[2]

इन पंक्तियों में परिवर्तन की आकांक्षा, संघर्ष की निरंतरता और साहित्य की शक्ति में विश्वास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। हिन्दी की दलित कविता सामाजिक क्रूरता के विरुद्ध एक सशक्त प्रतिरोधी स्वर के रूप में स्थापित होती है। यह कविता न केवल शोषण और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाती है, बल्कि एक न्यायपूर्ण, समतामूलक और मानवीय समाज की स्थापना की दिशा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

दलित साहित्य में अभिव्यक्त पीड़ा किसी एक व्यक्ति अथवा कवि की निजी वेदना नहीं है, बल्कि यह समस्त दलित समुदाय की साझा ऐतिहासिक अनुभूति का परिणाम है। सदियों से चले आ रहे सामाजिक बहिष्कार, अपमान और दमन ने दलितों के जीवनानुभव को एक साझा संवेदना में रूपांतरित कर दिया है। यही कारण है कि दलित कविता में व्यक्त कष्ट व्यक्तिगत न होकर सामूहिक होता है, जो व्यापक सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करता है। दलितों की समस्याएँ–आर्थिक विषमता, सामाजिक असमानता और शैक्षिक पिछड़ापन–समान रूप से विद्यमान रही हैं, जिसके कारण उनमें वैचारिक एकता का विकास हुआ। यह एकता ही उनकी सबसे बड़ी शक्ति बनकर उभरती है और दलित कविता इसी सामूहिक चेतना का सशक्त प्रतिनिधित्व करती है।

जीविका और सामाजिक स्वीकृति की तलाश में दलितों ने विभिन्न धर्मों को अपनाया, तथापि सामाजिक असमानता की समस्या उनसे समाप्त नहीं हुई। इस साझा पीड़ा और अनुभव ने भारतीय दलित समाज में एक व्यापक एकजुटता का भाव उत्पन्न किया है। इसी संदर्भ में दलित कविता को "लोकतांत्रिक कविता" कहा जा सकता है, क्योंकि यह समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व जैसे मूल्यों को स्थापित करने की दिशा में सक्रिय है।

दलित कवियों की आकांक्षा केवल अपनी स्थिति का चित्रण करना नहीं है, बल्कि वे स्वतंत्रता और भाईचारे के मूल्यों को विकसित कर एक समतामूलक समाज की रचना करना चाहते हैं। वे इन मूल्यों को एक छोटे पौधे से वटवृक्ष में परिवर्तित करने का स्वप्न देखते हैं, जिससे एक सशक्त और न्यायपूर्ण भारतीय समाज का निर्माण हो सके। किंतु परंपरागत सामाजिक संरचना, जो जाति–आधारित पेशों और रूढ़ियों पर आधारित रही है, इस परिवर्तन में बाधा उत्पन्न करती है। "चमार का बेटा चमारी करे" जैसी मानसिकता न केवल व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन करती है, बल्कि सामाजिक गतिशीलता को भी अवरुद्ध करती है। इस प्रकार परंपरा और रूढ़ियाँ दलितों के विकास के मार्ग में प्रमुख अवरोध के रूप में उपस्थित रही हैं।

दलितों ने हजारों वर्षों तक अपमान, अन्याय और दासता को सहन किया है। यह गुलामी स्वाभाविक नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना द्वारा आरोपित थी। इसलिए दलित कवियों की रचनाओं में इन रूढ़ियों और परंपराओं के प्रति तीव्र विरोध और विद्रोह का स्वर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचारों से प्रेरित होकर दलित कविता ने आत्मसम्मान, अधिकार–बोध और सामाजिक जागरूकता को प्रोत्साहित किया है। यह कविता न केवल सामाजिक कुरीतियों का विरोध करती है, बल्कि दलित समाज में आत्मविश्वास और धैर्य का संचार भी करती है।

उदाहरणस्वरूप निम्न पंक्तियाँ दलित चेतना के जागरण और आत्म–सुधार के आग्रह को व्यक्त करती हैं –

"शूद्रों गुलाम रहते सदियाँ गुजर आई हैं,
जुल्मों–सितम को सहते, रूढ़ियाँ गुजर गई हैं।
अब तो जरा विचारो, सदियाँ गुजर गई हैं,
अपनी दशा सुधारो, सदियाँ गुजर गई हैं।"[3]

इन पंक्तियों में इतिहास की पीड़ा के साथ–साथ परिवर्तन की चेतना और आत्मनिर्णय का आह्वान निहित है।

हिन्दी के दलित कवियों में विद्रोह की भावना विशेष रूप से प्रमुख है। ओमप्रकाश वाल्मीकि, कंवल भारती, श्योराज सिंह बेचैन, मोहनदास नैमिशराय, डॉ. धर्मवीर आदि कवियों की रचनाओं में यह विद्रोही स्वर अत्यंत प्रखर रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इन रचनाकारों ने सामाजिक परंपराओं और जातिगत संरचनाओं को चुनौती देते हुए अपने अनुभवों को निर्भीकता के साथ प्रस्तुत किया है।

इसी क्रम में असंग घोष की कविता "खामोश नहीं हूँ मैं" का लोकतांत्रिक और प्रतिरोधी स्वर दृष्टव्य है –

"अबे! ओ जाति, तू जाती क्या बामन के घर,
उसकी मेहरारू से पूछने, तेरा जनेऊ हुआ क्या?"[4]

इन पंक्तियों में जाति–व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य और विद्रोह का स्वर स्पष्ट रूप से उभरता है। यह भाषा और अभिव्यक्ति पारंपरिक शिष्टता के दायरे को तोड़ते हुए उस सामाजिक यथार्थ को सामने लाती है, जिसे लंबे समय तक दबाया गया था। हिन्दी की दलित कविता सामूहिक पीड़ा, वैचारिक एकता और सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा का सशक्त माध्यम है। यह कविता लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना करते हुए सामाजिक रूढ़ियों और असमानताओं के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक संघर्ष प्रस्तुत करती है।

हिन्दी की दलित कविता में सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं के विरुद्ध तीव्र प्रतिरोध का स्वर स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होता है। यह प्रतिरोध केवल नकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि एक नवीन, समतामूलक और मानवीय समाज के निर्माण की वैचारिक आधारभूमि भी है। दलित कवियों ने परंपरागत सामाजिक संरचनाओं–विशेषतः जाति–व्यवस्था, वर्ण–व्यवस्था और ब्राह्मणवादी वर्चस्व को चुनौती देते हुए उनके अंतर्विरोधों को उजागर किया है। इस प्रक्रिया में उनका काव्य सामाजिक यथार्थ का निर्भीक उद्घाटन करता है और परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

कंवल भारती इस संदर्भ में अग्रणी दलित चिंतकों में से एक हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में ब्राह्मणवादी परंपरा और उससे जुड़ी रूढ़ियों का सशक्त विरोध किया है। उनका काव्य न केवल सामाजिक असमानताओं की आलोचना करता है, बल्कि वैकल्पिक सामाजिक मूल्यों की स्थापना की दिशा में भी प्रेरित करता है। इसी प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, कुसुम वियोगी, श्योराज सिंह बेचैन, मुसाफिर बैठा, मुकेश मानस, अनिता भारती तथा रजनी तिलक आदि कवियों ने भी अपनी रचनाओं में सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध सशक्त स्वर उठाया है।

दलित कविता की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह परंपरागत आस्थाओं और सांस्कृतिक मान्यताओं का पुनर्मूल्यांकन करती है। उदाहरणस्वरूप, मुसाफिर बैठा अपनी कविता में "गाय हमारी माता है" जैसी प्रचलित धारणा पर व्यंग्य करते हुए प्रश्न उठाते हैं –

"गाय हमारी माता है,
तो बाप कौन है?
इस बावत
औलाद भी क्यों मौन है?"[5]

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि धार्मिक आस्थाओं के अंतर्विरोधों को उजागर करते हुए समाज को आत्ममंथन के लिए प्रेरित करता है।

इसी प्रकार जयप्रकाश कर्दम के काव्य–संग्रह "गूंगा नहीं था मैं" में सामाजिक विषमता, जातिगत भेदभाव और रूढ़िगत परंपराओं के विरुद्ध तीखा प्रतिरोध दिखाई देता है। उनकी कविताएँ दलित जीवन की वास्तविकताओं को उजागर करते हुए विद्रोह की चेतना को प्रखर बनाती हैं।

दलित कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों में वर्ण–व्यवस्था और जाति–व्यवस्था का विरोध केंद्रीय स्थान रखता है। यह कविता जातिगत असमानता को न केवल अस्वीकार करती है, बल्कि उसे समाप्त करने का आह्वान भी करती है –

"जुल्म अब मत सहो नेक मर्दों,
जाति पर जान कुर्बान कर दो।"[6]

यहाँ कवि अन्याय के विरुद्ध संघर्ष और आत्मसम्मान की रक्षा के लिए सक्रिय प्रतिरोध का संदेश देता है।

मनुवादी व्यवस्था, जो जातीय भेदभाव की जड़ मानी जाती है, दलित कवियों के लिए आलोचना का प्रमुख विषय रही है। धार्मिक ग्रंथों और कर्मवाद–भाग्यवाद की अवधारणाओं के माध्यम से स्थापित सामाजिक नियंत्रण को दलित कविता नकारती है। इसी संदर्भ में कवि ईश्वर की पारंपरिक अवधारणा को चुनौती देते हुए कहता है –

"मैं नकारता हूँ
ऐसे ईश्वर के अस्तित्व को,
स्वत्व को,
उसकी सत्ता, प्रभुता, अमरत्व को,
सर्वस्व को –
क्योंकि
संसार का सृजन नहीं, विकास हुआ है।"[7]

इन पंक्तियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तार्किकता का आग्रह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जो दलित कविता को आधुनिक चिंतन से जोड़ता है।

दलित कविता सामाजिक क्रूरता के वास्तविक और कठोर चित्र भी प्रस्तुत करती है। स्त्री के प्रति हिंसा और जातिगत उत्पीड़न की घटनाओं को उजागर करते हुए कवि संवेदनशील प्रश्न उठाता है –

"यदि तुम्हारी बहनों–बेटियों को
सर्वथा निर्वस्त्र कर घुमाया जाए,
गली–गली नचाया जाए,
तब तुम्हें कैसा लगेगा?"[8]

यह प्रश्न केवल संवेदना जगाने के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक विवेक को झकझोरने के लिए है।
इसी क्रम में जातिवाद की जड़ों पर प्रहार करते हुए जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं –

"जब तक स्मृति रहेगी,
रामायण, गीता और वेद रहेंगे,
तब तक वर्ण–शुचिता रहेगी,
अस्पृश्यता रहेगी"[9]

यहाँ कवि उन सांस्कृतिक ग्रंथों और मान्यताओं की आलोचना करता है, जिनके माध्यम से सामाजिक असमानता को बनाए रखा गया।

अंततः दलित कविता केवल विरोध तक सीमित नहीं रहती, बल्कि परिवर्तन का स्पष्ट आह्वान भी करती है –

"ओ! दलित! क्यों मांगता है
गिड़गिड़ाकर मेहनत का मुआवजा,
उठ और कर दे विद्रोह
छीन इनसे मेहनत का मुआवजा
इसी का नाम परिवर्तन है।"[10]

इन पंक्तियों में आत्मनिर्भरता, संघर्ष और क्रांतिकारी चेतना का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। हिन्दी की दलित कविता सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक आंदोलन है, जो न केवल अन्याय का प्रतिरोध करती है, बल्कि एक नये, समतामूलक और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण की दिशा में सक्रिय हस्तक्षेप भी करती है।

हिन्दी की दलित कविता मूलतः क्रान्तिकारी चेतना की वाहक है, जिसका प्रमुख उद्देश्य अपने समाज को न्याय दिलाना और समानता की स्थापना करना है। यह कविता केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम है। दलित कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से समाज की वास्तविक स्थिति को उद्घाटित करते हुए उन अन्यायपूर्ण परिस्थितियों को सामने रखा है, जिनका सामना दलित समुदाय सदियों से करता आया है। इस दृष्टि से दलित कविता सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध एक सक्रिय हस्तक्षेप है, जो न केवल शोषण को उजागर करती है, बल्कि उसे समाप्त करने का आह्वान भी करती है।

दलित कविता का यह क्रान्तिकारी स्वर समाज में शांति और न्यायपूर्ण समानता की स्थापना की आकांक्षा से प्रेरित है। कवि चेतावनी देते हैं कि यदि सामाजिक असंतुलन और अन्याय को समय रहते समाप्त नहीं किया गया, तो यह विस्फोटक रूप धारण कर सकता है –

"उठो! करोड़ों बेजुबान हाथ उठो!
कहीं हो न जाए घातक
ये 'बारूदी प्रदूषण'
प्राणों को निर्माण करो,
इससे पहले करो
कोई विस्फोट शांति का।"[11]

इन पंक्तियों में संघर्ष और शांति के मध्य संतुलन की आवश्यकता को रेखांकित किया गया है, जहाँ क्रान्ति को विनाश नहीं, बल्कि निर्माण का माध्यम माना गया है।

कंवल भारती दलित साहित्य में क्रान्तिकारी विचारधारा के प्रमुख प्रवक्ता हैं। वे अपनी कविताओं के माध्यम से शोषक वर्ग को आगाह करते हुए सामाजिक परिवर्तन की अनिवार्यता को रेखांकित करते हैं –

"तुम ताजा हवाओं को रोक रहे हो,
बंद करने लगे हो खुले वातायनों को,
लेकिन अब वे भी बंद नहीं होंगे,
क्योंकि चौखट का आख़िरी हिस्सा भी टूट गया है।"[12]

यहाँ कवि स्पष्ट संकेत देता है कि परिवर्तन की प्रक्रिया अब अवरुद्ध नहीं की जा सकती, यह अनिवार्य और अपरिहार्य है।

इसी क्रम में 'मुक्ति संग्राम जारी है' कविता में कंवल भारती डॉ. भीमराव अम्बेडकर के आंदोलन से प्रेरणा लेते हुए दलित मुक्ति संघर्ष की निरंतरता को रेखांकित करते हैं –

"बाबा, तुम मरे नहीं हो,
जीवित हो
हमारी चेतना में,
हमारे संघर्ष में
वह मुक्ति संग्राम जारी रहेगा
जब तक कि हमारे मुरझाए पौधों के
हिस्से का सूरज उग नहीं जाता।"[13]

इन पंक्तियों में अम्बेडकरवादी चेतना का प्रभाव स्पष्ट है, जो दलित कविता को वैचारिक आधार प्रदान करता है।

दलित कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से न केवल शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई है, बल्कि दलित समाज का मनोबल भी सुदृढ़ किया है। सुशीला टाकभौरे दलितों को आत्मविश्वास और वैचारिक शक्ति प्रदान करते हुए लिखती हैं –

"वर्तमान के कानों को
समय की पुकार सुनने दो
कर्मठ हाथों को उठने दो
आकाश तक
तीन डग में नाप लो
संपूर्ण विश्व
क्योंकि तुम में शक्ति है, निष्ठा है, युक्ति है
तुम सर्वशक्तिमान हो।"[14]

इन पंक्तियों में आत्मबल, श्रम और संघर्ष के माध्यम से आत्मनिर्भरता की प्रेरणा निहित है।

इसी प्रकार रजनी तिलक की कविताओं में क्रान्ति का प्रखर स्वर दिखाई देता है, जहाँ वे दलित समाज को संघर्ष के लिए तैयार करती हैं–

"संघर्ष के लंबे रास्ते पर,
तेज खड्ग की धारों पर
बाँध कफन चलना होगा
एक दिन विप्लव करना होगा
दलित, तुझे बदलना होगा।"[15]

यहाँ क्रान्ति को एक अनिवार्य प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो सामाजिक परिवर्तन का आधार बनती है।

दलित कविता में स्त्री चेतना और आत्मसम्मान का स्वर भी महत्वपूर्ण है। 'पदचाप' कविता में कवयित्री आत्मविश्वास के साथ अपनी पहचान स्थापित करती है–

"मैं
दलित अबला नहीं,
नए युग की सूत्रपात हूँ,
सृष्टि की जननी,
नए युग की आवाज हूँ।"[16]

इन पंक्तियों में दलित स्त्री की आत्मनिर्भरता और सशक्तिकरण की चेतना स्पष्ट रूप से उभरती है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में आरक्षण जैसे मुद्दों पर भी दलित कविता ने अपनी मुखर प्रतिक्रिया व्यक्त की है। डॉ. स्नेही व्यंग्यात्मक शैली में सामाजिक विडंबनाओं को उजागर करते हैं –

"एक बात बताऊँ
समझौता कर लीजिए
आप मैला ढोइए
अपमान का घूँट पीजिए
हमें अपने तिलक, तराजू, तलवार और ताज दे दीजिए,
आप अपना आरक्षण आज ही वापस ले लीजिए।"[17]

इन पंक्तियों में व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक अन्याय और दोहरे मानदंडों पर तीखा प्रहार किया गया है। हिन्दी की दलित कविता क्रान्ति, संघर्ष और सामाजिक न्याय की सशक्त अभिव्यक्ति है। यह कविता न केवल दलित समाज की पीड़ा और संघर्ष को स्वर देती है, बल्कि उन्हें आत्मबल, चेतना और परिवर्तन की दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा भी प्रदान करती है।

दलित साहित्य की समकालीन धारा में श्योराज सिंह बेचैन का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। वे दलित कविता के उन महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों में हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित अस्मिता, विद्रोह और संघर्ष की चेतना को सशक्त स्वर प्रदान किया है। उनका काव्य–संग्रह क्रौंच हूँ मैं दलित साहित्य जगत में विशिष्ट स्थान रखता है। इस संग्रह की कविताओं में शोषण के विरुद्ध तीव्र प्रतिरोध और आत्मसम्मान की आकांक्षा स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होती है। कवि शोषक शक्तियों के प्रति सीधी और तीखी भाषा का प्रयोग करते हुए चेतावनी देता है –

''छाती पर से
उठो, अन्यथा
लतिया देंगे,
दस्तक देंगे,
इच्छित और उपेक्षित
दुनिया हम ही रचेंगे
और बदलने वाली चीजें हम बदलेंगे।''[18]

यहाँ कवि की भाषा आक्रोश, आत्मविश्वास और परिवर्तनकारी संकल्प से परिपूर्ण है, जो दलित चेतना के उभार का प्रतीक है। इस प्रकार की कविताएँ केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति का वैचारिक घोष भी हैं।

इसी क्रम में दलित कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित समाज के विविध सामाजिक प्रश्नों–भेदभाव, अन्याय और शोषण को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। डॉ. गया प्रसाद प्रशान्त की कविता भी इसी संघर्षशील चेतना को मुखर करती है, जिसमें अधिकारों की प्राप्ति के लिए संगठित होने और संघर्ष करने का आह्वान किया गया है –

''छीनने को एक, हो जाओ तैयार।
माँगे भीख नहीं मिलती, मिलेंगे कब अधिकार?
आजादी की उन्हें जरूरत है
जिनकी है बर्बादी,
पिसती आई है सदियों से
दुखियों की आबादी।
जागो अरे! वंचितों, तुमको अब लेने अधिकार।''[19]

इस कविता में 'अधिकार–चेतना' का स्वर अत्यंत प्रखर रूप में उभरता है, जो दलित वर्ग को निष्क्रियता से बाहर निकलकर सक्रिय प्रतिरोध की ओर प्रेरित करता है। यह काव्य–दृष्टि स्पष्ट करती है कि सामाजिक परिवर्तन केवल याचना से नहीं, बल्कि संघर्ष और संगठन से संभव है।

वास्तव में, दलितों को सामाजिक क्रूरता और अमानवीय व्यवहार का दंश ऐतिहासिक रूप से सहना पड़ा है। यही कारण है कि समकालीन दलित कविता में इस क्रूरता के विरुद्ध एक सशक्त प्रतिरोधी स्वर उभरकर सामने आया है। यह स्वर केवल पीड़ा का वर्णन नहीं करता, बल्कि अन्याय के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा भी देता है। इस प्रकार, दलित कविता आज सामाजिक परिवर्तन की एक प्रभावशाली वैचारिक शक्ति के रूप में स्थापित हो रही है, जो समानता, न्याय और मानवीय गरिमा की स्थापना के लिए सतत प्रयत्नशील है।[20]

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सामाजिक क्रूरता के प्रति विकसित हुआ विरोधी स्वर आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक अत्यंत सशक्त, प्रासंगिक एवं परिवर्तनकारी प्रवृत्ति है। यह स्वर केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति तक सीमित न होकर सामाजिक यथार्थ की गहन संवेदना और प्रतिरोधात्मक चेतना का प्रतीक है, जो समाज में व्याप्त असमानता, शोषण, भेदभाव एवं अमानवीय व्यवहारों के विरुद्ध मुखर होकर सामने आता है। भारतीय सामाजिक संरचना में जाति–आधारित पदानुक्रम, आर्थिक विषमता तथा सांस्कृतिक वर्चस्व ने लंबे समय तक एक बड़े वर्ग को हाशिए पर बनाए रखा। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में सामाजिक क्रूरता के विरुद्ध यह विरोधी स्वर एक वैचारिक प्रतिरोध के रूप में विकसित हुआ, जिसने साहित्य को केवल सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति के दायरे से बाहर निकालकर उसे सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ दिया। इस विरोधी स्वर की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही है कि इसने उन अनुभवों और पीड़ाओं को साहित्यिक केंद्र में स्थापित किया, जिन्हें परंपरागत साहित्य में या तो स्थान नहीं मिला या उन्हें गौण मान लिया गया था। यह स्वर हाशिए के समाज की आवाज को मुख्यधारा में लाने का प्रयास करता है और मानवीय गरिमा, समानता एवं न्याय जैसे मूलभूत मूल्यों की पुनर्स्थापना की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साहित्यिक दृष्टि से यह विरोधी स्वर भाषा, शैली एवं अभिव्यक्ति के स्तर पर भी विशिष्टता रखता है। इसमें यथार्थपरक, सीधी एवं प्रभावशाली भाषा का प्रयोग किया गया है, जो सामाजिक क्रूरता की कठोर वास्तविकताओं को बिना किसी आवरण के प्रस्तुत करती है। यह भाषा न केवल संवेदना को जाग्रत करती है, बल्कि पाठक को आत्ममंथन के लिए भी प्रेरित करती है। इस प्रकार सामाजिक क्रूरता के प्रति विरोधी स्वर केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन का हिस्सा है। यह स्वर समाज में व्याप्त अन्यायपूर्ण संरचनाओं को चुनौती देता है और एक समतामूलक, न्यायपूर्ण एवं मानवीय समाज की स्थापना की दिशा में निरंतर अग्रसर है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में इसकी उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि साहित्य केवल कल्पना का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का सशक्त उपकरण भी है।

संदर्भ –

[1] कर्दम, जयप्रकाश – दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2008, पृष्ठ 45
[2] वाल्मीकि, ओमप्रकाश – सदियों का संताप, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1998, पृष्ठ 72
[3] भारती, कंवल – दलित चेतना और साहित्य, दिल्ली : गौतम बुक सेंटर, 2005, पृष्ठ 88
[4] घोष, असंग – खामोश नहीं हूँ मैं, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2010, पृष्ठ 52
[5] बैठा, मुसाफिर – दलित कविता संग्रह, पटना : समता प्रकाशन, 2012, पृष्ठ 64
[6] कर्दम, जयप्रकाश – गूंगा नहीं था मैं, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2003, पृष्ठ 91
[7] भारती, कंवल – दलित विमर्श और कविता, दिल्ली : साहित्य भवन, 2007, पृष्ठ 118
[8] वाल्मीकि, ओमप्रकाश – सदियों का संताप, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1998, पृष्ठ 102
[9] कर्दम, जयप्रकाश – गूंगा नहीं था मैं, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2003, पृष्ठ 134
[10] मानस, मुकेश – समकालीन दलित कविता, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2015, पृष्ठ 77
[11] मानस, मुकेश – समकालीन दलित कविता, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2015, पृष्ठ 77

[12] भारती, कंवल – दलित विमर्श और साहित्य, दिल्ली : साहित्य भवन, 2007, पृष्ठ 95
[13] भारती, कंवल – मुक्ति संग्राम जारी है, दिल्ली : गौतम बुक सेंटर, 2010, पृष्ठ 41
[14] टाकभौरे, सुशीला – दलित स्त्री की आवाज, भोपाल : मध्यम प्रकाशन, 2012, पृष्ठ 67
[15] तिलक, रजनी – दलित चेतना की कविताएँ, नई दिल्ली : समता प्रकाशन, 2014, पृष्ठ 83
[16] टाकभौरे, सुशीला – पदचाप, भोपाल : साहित्य संगम, 2011, पृष्ठ 29
[17] स्नेही, डॉ. – समकालीन दलित काव्य, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2015, पृष्ठ 102
[18] बेचैन, श्योराज सिंह – क्रौंच हूँ मैं. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2008, पृष्ठ 45
[19] प्रशान्त, गया प्रसाद – दलित कविता संकलन. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2012, पृष्ठ 78
[20] वाल्मीकि, ओमप्रकाश – दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2001, पृष्ठ 112